भीष्मपर्व कथासार

भीष्मपर्व महाभारत का छठापर्व है। इसमें १२२ अध्याय एवं ५९४२ श्लोक हैं। आचार्य विमलबोध, आचार्य देवबोध (देवस्वामी), आचार्य आनन्दपूर्ण विद्यासागर्, आचार्य नीलकण्ठ आदि अनेक प्रसिद्ध टीकाकारों की टीका भीष्मपर्व पर प्राप्त होती है। भीष्मपर्व चार उपपर्वों में बँटा है। १-जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व, २-भूमिपर्व, ३-श्रीमद्भगवद्गीतापर्व एवं ४-भीष्मवधपर्व जिनमें क्रमशः १०, २, ३० एवं १० आध्याय हैं।

१.जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व

इसके प्रथम अध्याय का प्रारम्भ नारायणं नमस्कृत्य... इस मङ्गलाचरण के उपरान्त राजा जनमेजय द्वारा वैशंपायन से कुरुक्षेत्र में युद्धार्थ समागत कौरव पाण्डवपक्षीय राजाओं ने किस प्रकार युद्ध किया इस प्रश्न से होता है। इसके प्रत्युत्तर में वैशम्पायन द्वारा सभी सुविधाओं के साथ शिबिर में ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। इस अध्याय में जो विशेष बात है वह यह कि किस प्रकार कौरव, पाण्डव एवं सोमकों ने युद्ध के लिए विशेष नियम बनाये जिसमें युद्धधर्म की मर्यादा परिलक्षित होती है। जिसके अनुसार सूर्यास्त के बाद युद्ध बन्द होने पर किसी का किसी से शत्रुतापूर्ण व्यवहार न हो, सभी का परस्पर प्रेम बना रहे, वाग्युद्ध में प्रवृत्त के साथ वाग्युद्ध ही हो, सेना से बाहर निकले व्यक्ति का वध निषेध, पदाति, रथी, अश्वारोही एवं गजारोही का अपने समान व्यक्ति से ही युद्ध हो, जिसमें जैसी योग्यता, उत्साह तथा बल हो उसके अनुरूप विपक्षी को सावधान कर युद्ध करना असावधान या घबराये व्यक्ति पर वार नहीं करना, किसी के साथ युद्ध में लगे व्यक्ति, शरणागत और युद्धविमुख एवं क्षीणशस्त्र पर वार निषेध, सूत, भेरी शंखवादक, शस्त्र पुहुँचाने वाले लोगों पर प्रहार न हो। आगे द्वितीयाध्याय में वेदव्यास के आगमन उनके द्वारा कौरवों के मृत्युकाल के आने की सूचना, धृतराष्ट्र को युद्ध देखने की क्षमता प्रदान करने का व्यास द्वारा प्रस्ताव जिसके प्रत्युत्तर में पुत्र मरण देखने की अनिच्छा परन्तु युद्धविवरण के श्रवण की लालसा धृतराष्ट्र की देखकर संजय धृतराष्ट्र के सारथी को श्रीव्यास द्वारा दिव्य दृष्टि दान एवं अनेक भय सूचक उत्पातों का वर्णन किया गया है। प्रथम दो अध्यायों में क्रमशः ३४ एवं ३३ श्लोक हैं। तृतीय अध्याय में ज्योतिषशास्त्र के आधार पर ग्रह नक्षत्रों की स्थिति स्थान परिवर्तन, तिथिक्षय आदि के आधार पर अमङ्गल सूचक उत्पातों एवं विजय सूचक लक्षणों का वर्णन किया है जिसमें ८५ श्लोक हैं। चतुर्थ अध्याय में भूमि के महत्व दर्शाया गया है। सब कुछ भूमि पर ही उत्पन्न होता है और भूमि में ही विलीन होता है। भूमि ही सब प्राणियों की प्रतिष्ठा एवं अश्रय है इसी भूमि में आसक्ति रखनेवाले लोग अपना जीवन अर्पण करते हैं। स्थावर जङ्गम भेद से दो प्रकार के प्राणी हैं, जिनमें जङ्गम (अण्डज, स्वेद और जरायुज में) मनुष्य श्रेष्ठ हैं। इस अध्याय में २१ श्लोक हैं। आगे के १८ श्लोक वाले पांचवें अध्याय में पञ्चमहाभूतों के गुणों तथा सुदर्शनद्वीप का वर्णन है। चक्र की भाँति गोलाकार, लवणसमुद्र से वेष्टित सम्पदाओं एवं धनधान्य प्रासादादि से

युक्त सुदर्शन द्वीप दर्पण के प्रतिबिम्ब की भाँति चन्द्रमण्डल में प्रतिबिम्बित होता है। छठे अध्याय (श्लो.५६) में सुदर्शन द्वीप के भारत, हैमवत, हरि आदि वर्षों का, हिमालय, हेमकूट, नीलगिरि, निषध, मान्यवान् गन्धमादनादि पर्वतों एवं सुवर्णगिरि मेरु का रोचक वर्णन किया गया है। ब्रह्मलोक से
बिन्दुसरोवर पर गङ्गा के आने और वहाँ से नलिनी, पावनी, सरस्वती आदि सात धाराओं में विभक्त होने का वर्णन प्राप्त होता है। सातवें (श्लो.३१) आठवें (श्लो.७६) तथा १० वें (श्लो.१५) अध्यायों में क्रमशः भारतवर्ष की नदियों देशों एवं जनपदों के नाम तथा वहाँ की भूमि का महत्व बतलाया गया है, साथ ही युगों के अनुसार मनुष्यों की आयु तथा गुणों का वर्णन किया गया है। जिसके अनुसार कृतादियुगों में ४०००, ३००० एवं २००० वर्ष की आयु बतलायी गयी है कलियुग में कोई मर्यादा नहीं है इसी के साथ प्रथ उपपर्व पूर्ण होता है।

"भूमिपर्व" नामक द्वितीय उपपर्व में दो अध्याय हैं। ग्यारहवें अध्याय (श्लो.४०) में शाक द्वीप का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ के वर्षों, पर्वतों नदियों आदिका वर्णन कर वहाँ के मङ्ग, मशक, मानस और मन्दग इन चार जनपदों का विवरण है, जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रियादि क्रमशः रहते हैं। धर्मज्ञ एवं स्वधर्मपालन में रत होने से यहाँ न राजा है और न ही दण्ड विधान। बारहवें (श्लो.५२) अध्याय में कुश, शाकादि पाँच द्वीपों एवं राहु, सूर्य एवं चन्द्रमा के प्रमाणों का वर्णन है जिसमें उनके व्यासगत एवं परिधि का विस्तार वर्णन है।

आगे तेरहवें अध्याय से भगवद्गीता पर्व का आरम्भ होता है जो ४२ वें अध्याय तक चलता है। इसके आरम्भ में संजय युद्ध भूमि से लौटकर धृतराष्ट्र को भीष्म की मृत्यु का समाचार सुनाते हैं, जिस पर विलाप करते हुए धृतराष्ट्र भीष्मपितामह के मारे जाने की घटना को विस्तार पूर्वक सुनने की इच्छा व्यक्त करते हैं। इस पर आगे के १५ वें (श्लो.२०) अध्याय में धृतराष्ट्र के प्रश्न का उत्तर देते हुए दुर्योधन द्वारा दुःशासन को भीष्म की रक्षा के लिए समुचित व्यवस्था करने का आदेश देने की बात करते हैं। वह कहता है कि शिखण्डी के पूर्व में स्त्री होने के कारण भीष्म द्वारा उसको न मारने की प्रतिज्ञा को ध्यान में रखकर शिखण्डी से उनकी रक्षा और शिखण्डी को मारने का यत्न करने का आदेश देता है। आगे के अनुविन्द, केकय, काम्बोज, कलिङ्ग और कोशल नरेश तथा कृतवर्मा आदि वीर पुरुषसिंहों और उनकी सेना तथा शस्त्रास्त्रों का वर्णन है। आगे के सत्रहवें अध्याय में इन्ही के आगे बढने, तथा उनके व्यूह वाहन और ध्वजों का वर्णन है। आगे कौरव सेनाओं का कोलाहल, भीष्म के रक्षकों का वर्णन है। युधिष्ठिर अर्जुन विमर्श से वज्रव्यूह की रचना और भीमसेन के नेतृत्व में आगे बढने की घटना का वर्णन आगे के अध्याय में वर्णित है।

बीसवें अध्याय में दोनों सेनाओं की स्थिति एवं कौरव सेना के अभियान का वर्णन है। कौरव सेना को देखकर विषाद युक्त युधिष्ठिर को धर्म एवं श्रीकृष्ण की महत्ता तथा कृपा से विजय सुनिश्चित कहता है। आगे युधिष्ठिर की रणयात्रा, अर्जुन एवं भीमसेन की प्रशंसा तथा श्रीकृष्ण का कौरव सेना के विनाश हेतु अर्जुन

को आदेश देने का वर्णन है। तेईसवें अध्याय में विजय हेतु अर्जुन द्वारा शक्तिस्वरूपा दुर्गा की आराधना का वर्णन है। चौबिसवें अध्याय में सैनिकों के हर्ष एवं उत्सह के विषय में धृतराष्ट्र और संजय का संवाद है। आगे के २५ से ४२ अध्यायों में श्रीमद्भगवद्गीता वर्णित है। गीता मानवमात्र के कल्याण के श्रेष्ठ ग्रन्थ है। मानवजीवन की ऐसी कोई समस्या नहीं है, जिसका समुचित समाधान गीता में न हो।

गीता का प्रथम अध्याय - भीष्म पर्व का २५ अध्याय अर्जुनविषाद योग के नाम से प्रसिद्ध है। अर्जुन का विषाद यहाँ योग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह भी प्रभु से मिलाने वाला,
जीवन को सफल बनाने वाला एक साधन है। अर्जुन वीर, सात्विक, निश्चल एवं पवित्र है परन्तु धर्मज्ञ न होने से विषाद ने उसे योगारूढ बना दिया जिससे भौतिक सुख राज्यादि के आकर्षण से रहित होकर सत्य के प्रति ग्रहणशील हो गया। अर्जुन का अहोभाग्य है कि उसको श्रीकृष्ण के रूप में सारथी यानी सद्गुरु मिल गये थे।

विषाद एक मानसिक आघात की अवस्था है जो धन, जन अथवा मान हानि होने पर बुद्धि तथा मन के परस्पर सन्तुलन के बिगड जाने पर होती है। किन्तु यही विषाद सद्गुरु, अथवा प्रभु की शरण जाने से महान् परिवर्तन अथवा उत्थान का कारण बना जाता है। गीता का सन्देश अर्जुन के विषाद योग का ही सुफल है।

गीता द्वितीय अध्याय - भीष्मपर्व का २६ वाँ अध्याय सांख्ययोग या ज्ञान योग है। यहाँ श्रीकृष्ण ने कर्म योग की स्थापना ज्ञान योग के प्रकाश में की है। अतः इस अध्याय के प्रारम्भ में आत्मा के स्वरूप की विवेचना की गयी है। यहाँ अनेक युक्तियों से निष्काम भाव से स्वधर्म पालन पर जोर दिया गया है। फलासक्ति रहित होकर कर्म करने से चित्तशुद्धि होती है जिससे आत्मज्ञान का उदय होता है। कर्मयोगी विवेक, साहस, धैर्य और दृढता से युक्त होकर स्वधर्म का पालन करता है। वह फल के सम्बन्ध में चिन्ता नहीं करता, क्यों कि फल सदैव ईश्वराधीन होता है। ईश्वर में विश्वास और भक्ति में दृढ रहने से वह निराश नहीं होता। कर्मयोगी भोग से त्याग की ओर, स्वार्थ से परमार्थ की ओर, संकीर्णता से उदारता की ओर, कुटिलता से सरलता की ओर, तथा मोह से प्रेम की ओर बढता रहता है। कर्मयोग की साधना मनुष्य को परमात्मा के चिन्मय एवं आनन्दमय स्वरूप में स्थिर कर देती है।

गीता के तृतीयाध्याय यानी भीष्म पर्व के २६ वें अध्याय में भगवान् स्पष्ट करते हैं कि काम मनुष्य की इन्द्रिय, मन और बुद्धि को भोगासक्त करके उन्हें विषयाभिमुख एवं विषयानुरागी बना देता है। काम का नाश होने पर मनुष्य निष्काम कर्म कर कर्मयोगी बन सकता है। निष्काम कर्म करने से चित्तशुद्धि होकर ज्ञान का उदय होता है और कर्मयोगी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेता है। स्वार्थ भाव एवं संकीर्णता से ऊपर उठकर परमार्थ भाव एवं उदारता से निष्काम

कर्म करना ही यज्ञ करना है। अहङ्कार से कर्म में प्रवृत्त होने से कर्म दूषित हो जाता है। मनुष्य को सदैव अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए, क्यों कि स्वधर्मपालन में ही अपना कल्याण सन्निहित होता है।

गीता की चौथा अध्याय - भीष्मपर्व के २८ वें अध्याय में ज्ञानकर्म-सन्यासयोग की चर्चा है। यहाँ ज्ञान का अर्थ तत्त्वज्ञान, कर्म का अर्थ कर्म योग एवं सन्यास का अर्थ सांख्य या ज्ञान योग है। कर्म सन्यास का अर्थ कर्म का त्याग अथवा कर्म करते हुए फल का सम्बन्ध न रखने से है। इस अध्याय के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण कर्म योग की परम्परा का वर्णन करते हैं तथा अवतार के रहस्य का निरूपण करते हैं। भगवान् स्वयं अवतार लेकर धर्म की स्थापना एवं अधर्म के उच्छेद द्वारा समाज की व्यवस्था का पुनर्निर्माण करते हैं तथा अपने आचरण के उदाहरण द्वारा मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों को पुनरुज्जीवित करते हैं। भगवान् जन कल्याण के लिए सदाचार की रक्षा तथा दुष्टता का दमन करते हैं। एक ही परमात्मा की उपासना अनेक देवी देवताओं के रूपमें भी होती है और जो परमात्मा को जैसे भी भजता है, परमात्मा उसे वैसे ही स्वीकार
करता है। भगवान को प्राप्त करने के लिए अनेक यज्ञ किये जाते हैं। द्रव्य यज्ञों की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है। ज्ञान के समान कोई पवित्र वस्तु दूसरी नहीं हो सकती है। अन्त में श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म योग का अधिकारी मान कर कर्म करने का उपदेश एवं आदेश करते हैं।

अध्याय पाँचवा - भीष्मपर्व के २९ वें अध्याय में कर्म सन्यास योग का वर्णन है। ज्ञान के अन्तर्गत कर्म का सन्यास त्याग, परमात्मा के साथ ऐक्यस्थापित करने का एक उपाय है। परब्रह्म माया सहित होने पर सगुण ब्रह्म एवं माया रहित होने पर निर्गुण ब्रह्म शुद्ध चैतन्य रूप होता है। ज्ञानी का चिन्तन होता है कि परब्रह्म निर्लेप, निर्विकार, निष्क्रिय शुद्ध चैतन्य स्वरूप सच्चिदानन्द घन है और आत्मा उसका अंश है तथा देह इन्द्रिय आदि के कर्म प्रकृति के कारण होते हैं जिससे आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। ज्ञानयोगी मनन निदिध्यासन द्वारा आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जानकर इसमें स्थित हो जाता है। ज्ञान योगी जीवन काल में ही मुक्त हो जाता है तथा शुद्धभाव से सहज कर्म करता हुआ देहपात होने पर ब्रह्मलीन हो जाता है। निर्गुण एवं सगुण परमात्मा के ध्यान का अभ्यास मनुष्य को शक्ति एवं शान्ति प्रदान करता है। ध्यान द्वारा जीवन की भव्यता एवं दिव्यता की सुखानुभूति होती है।

षष्ठाध्याय का सार - भीष्म पर्व के ३० वें अध्याय में आत्म संयमयोग की कर्मयोग की प्रस्थापना के साथ कर्मयोगी को सन्यासी कहा गया है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि फल की कामना को त्याग कर ईश्वरार्पणबुद्धि से कर्म करने वाला पुरुष सन्यासी तथा योगी है। ध्यान की साधना कर्म, भक्ति और ज्ञान को पूर्णता प्रदान करने में सहायक होती है। मनुष्य विवेक, विचार, स्वाध्याय, सत्संग एवं अभ्यास द्वारा अपने स्वरूप को पहचानकर आनन्दमय होकर कृतकृत्य हो सकता हैं। विवेकशील मनुष्य तटस्थ द्रष्टा होकर अपने भीतर के जगत का दर्शन करता

है तथा उसमें सुधार का प्रयत्न करता है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य को जीवन का महत्व समझना चाहिये तथा मान अपमान से ऊपर उठकर कर्म मार्ग में डट जाना चाहिए। सत्पुरुष न मान की इच्छा करता है न अमान का भय। कर्म योगी अतीत के बन्धन में भी नहीं पडता नही वह भविष्य की चिन्ता ही करता है। ज्ञान कर्म तथा भक्ति परमेश्वर के साथ एकत्व स्थापित करने पर योग हो जाते हैं। श्रीकृष्ण का कथन है कि सभी प्रकार कें योगियों में वह योगी श्रेष्ठ हैं, जो परमेश्वर में चित्त लगाकर श्रद्धापूर्वक उसका भजन करता है।

सातवे अध्याय का सार - भीष्मपर्व के ३१ वें अध्याय को ज्ञान विज्ञान योग कहा जाता है। भक्ति ज्ञान और वैराग्य की धारा यद्यपि गीता में आरम्भ से सतत् प्रवाहमान है तथापि प्रथम ६ अध्याय कर्मपरक, द्वितीय ६ अध्याय भक्ति परक और अन्तिम ६ अध्याय ज्ञान परक कहे जाते हैं। परमात्मा निर्गुण, निराकार चिन्मय होने पर भी मायोपाधि सहित होकर ईश्वर के रूप में सृष्टि की रचना, पोषण तथा प्रलय करता है। गीता के अनुसार प्रकृति के दो रूप हैं। 'अपरा' (जड पदार्थों या भौतिक जगत् की रचना करने वाली) प्रकृति में विकृति होने से ही सृष्टि होती है यह अपरा प्रकृति आठ प्रकार की है। दूसरी 'परा' प्रकृति चेतन, उच्च उत्कृष्ट है जिससे जीवात्मा प्रकट होकर देहों में प्रवेश करता है। मायामुक्त परमात्मा ईश्वर और मायायुक्त परमात्मा जीव है।

आठवें अध्याय का सार - भीष्मपर्व के ३२ वें अध्याय में अक्षर ब्रह्म योग की चर्चा है।

जीवन क्या है? मृत्यु के उपरान्त क्या होता है ऐसे अनेक प्रश्न विचारशील पुरुषों के मन में आते हैं अर्जुन के ऐसे ही प्रश्नो का उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि जीवन चैतन्य आत्मा का लक्षण है जो एक दिव्य ज्योति सदृश है। आत्मा परमज्योति स्वरूप परमात्मा का अंश है। परमात्मा की चैतन्य रूप परा प्रकृति चेतन जीवात्माओं का तथा जडरूपा अपरा प्रकृति अचेतन पदार्थों का मूल कारण है। इस प्रकार सारे विश्व में एक पर ब्रह्म ही परमार्थ या वास्तविक तत्व है जो अक्षर अर्थात् अविनाशी और नित्य है। परमात्मा की दो शक्तियाँ हैं एक चैतन्य शक्ति तथा क्रियाशक्ति प्रकृतिरूपमाया। जो ज्ञानवान् निर्गुण निराकार के साथ एक रूपता स्थापित कर लेता है वह जीवन्मुक्त हो जाता है तथा प्राण छोडते ही ब्रह्मलीन हो जाता है।

नवम अध्याय का सार - भीष्मपर्व के ३३ वें अध्याय का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण भगवत् प्राप्ति का सुगम उपाय बता रहे हैं। सरल, सुगम और सुलभ होने से इस अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं गोपनीय उपाय को राजविद्या या राजयोग कहा गया है। परमेश्वर माया रूपी प्रकृतिद्वारा सृष्टि की संरचना, संचालन एवं संहार करता है। विवेकशील मनुष्य इसी कारण परमात्मा को भजते हैं। भगवान् को प्रसन्न करना सरल है। भगवान् तो भाव के भूखे होते हैं। पत्र, पुष्प, फल और जल के भाव पूर्ण समर्पण से ही वह प्रसन्न हो जाते हैं। इस अध्याय के अन्त में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि वह भगवान् को अपना

मन समर्पित करके, भक्ति करने से भगवान् को प्राप्त हो जायगा। गीता के आरम्भ में श्रीकृष्ण ने दो ही निष्ठाओं की चर्चा की है एक ज्ञान निष्ठा और दूसरी कर्म निष्ठा तथा भक्तियोग को कर्मयोग के अन्तर्गत कहा है। श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म त्याग कर भक्ति करने का उपदेश नहीं देते बल्कि कर्म करते हुए भक्ति पूर्ण रहने का आदेश देते हैं। कर्म बहिरङ्ग है और भक्ति अन्तरङ्ग। कर्मफल के त्याग का अतिशय महत्व होने पर भी वह दुष्कर है। अतः एक सुगम एवं उत्तम उपाय बताते हुए, उसे राजविद्या या राजयोग के नाम से प्रस्तुत कर रहे हैं, जो वास्तव में कर्मयोग का ही एक उज्ज्वल रूप हैं। कर्मफल का केवल त्याग ही पर्याप्त नहीं है बल्कि श्रीकृष्णार्पणमस्तु ऐसा कह कर कर्म समर्पण भी कर देना चाहिये।

दशम अध्याय का सार - भीष्मपर्व का ३४ वां अध्याय श्रीमद्भगवद्गीता में विभूति योग के नाम से प्रसिद्ध है। परमात्मा ने अपने अनिर्वचनीय ऐश्वर्य से इस सृष्टि की रचना की। वह न केवल इस सृष्टि का मूल कारण है अपितु इसके कण कण में व्याप्त होकर स्थित है। इस सृष्टि का आदि मध्य और अन्त वही है। यह चित्र विचित्र सृष्टि उस परमेश्वर का एक स्वरूप है। जिस प्रकार बालक प्रारम्भ में वर्णमाला सीखता है और बाद में जटिलभाषा भी पढ लेता है, उसी प्रकार भक्त भी प्रारम्भ में उन भावों, पदार्थों, पशुपक्षियों, ऋषिमुनियों, देवताओं इत्यादि को भगवान् का स्वरूप मान लेता है, जिसमें भगवान् की शक्ति का विशेष स्फुरण अथवा प्रकाश होता है, तत्पश्चात् अभ्यास होने पर वह सम्पूर्ण सृष्टि को प्रभुमय देख सकता है।

ग्यारहवें अध्याय का सार - भीष्मपर्व के ३५ अध्याय में विश्वरूपदर्शन योग वर्णित है। विभूतियोग एवं विश्वरूपयोग का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। यद्यपि परमात्मा सृष्टि के कण कण में व्याप्त है किन्तु जिन वस्तुओं या व्यक्तियों में विशेषरूप से प्रकाशित होता है उसे विभूति कहते हैं। अर्जुन के मन में परमेश्वर के विश्वरूप के सन्दर्शन की उत्कण्ठा जाग उठी। और
उसने सोपाधिक विश्वरूप दिखाने की प्रार्थना की। जिसे देखने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान की। अर्जुन द्वारा दर्शन के उपरान्त की गयी स्तुति ही विश्वरूपदर्शन का सारतत्व है। अर्जुन ने कहा - हे भगवान् आपकी अनन्तता देखकर मेरा निश्चय हो गया कि आप ही परम अक्षरब्रह्म है तथा समस्त जगत् का उत्कृष्ट आधार और लयस्थान हैं। आप ही सनातन पुरुष परमात्मा हैं। आदिमध्यान्त रहित है प्रारम्भ में विश्वरूप दर्शन से आनन्दित हुआ अर्जन उसकी अनन्तता देख दिग् भ्रमित हो उसके विकराल एवं घोर रूप को देखकर वह पूछता है कि आप कौन हैं? इस विकराल रूप का क्या प्रयोजन है? तब भगवान ने कहा कि इस समय मैं महाकाल के रूप में प्रकट होकर विनाश के लिए प्रवृत्त हूँ। तू युद्ध नहीं करेगा तो भी ये योद्धायें विनष्ट हो जायें गे। जगत् का विधाता, कर्मफलदाता तो मैं हूँ तू तो निमित्तमात्र है।

गीता द्वादशाध्याय का सारांश - भीष्मपर्व के ३६ वें अध्याय में 'भक्तियोग' का वर्णन प्राप्त होता है। अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से इस सृष्टि के रहस्य, इसकी

उत्पत्ति स्थिति, विनाश के कारण परमतत्व को, उसे प्राप्त करने की विधि, तथा आत्मस्वरूप को भी जान लेना चाहता है। गीतामृत पान करते करते कभी कभी वह भ्रमित एवं विचिलित हो जाता है। गीता के पूर्व अध्यायों में जहाँ भगवान् ने राजगुह्य, विभूति ओर विश्वरूप दर्शन योग के माध्यम से अनन्य भक्त हो जाने का आदेश दिया। इसपर अर्जुन ने पूछा- निर्गुण निराकार की उपासना अथवा सगुण साकार उपासना इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? ज्ञान अथवा भक्तिमार्ग, प्रभु प्राप्ति में कौन श्रेयस्कार है? इस पर भगवान् ने भक्ति की महिमा को प्रतिष्ठित करते हुए स्पष्ट कहा कि - जो भक्तगण सगुणरूप परमेश्वर में मन एकाग्र करके श्रद्धापूर्वक भगवान् की उपासना करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं, किन्तु निर्गुण ब्रह्म के उपासक भी परमात्मा को ही प्राप्त होते हैं। निर्गुणोपासना (ज्ञान) दुःसाध्यं एवं सगुणोपासना भक्ति सुसाध्य है। हे अर्जुन तू सगुणोपासना का ही अधिकारी है। भक्ति मार्ग सहज, सरल और सरस है। लीलाधारी भगवान् की विश्वलीला जगत् के कल्याण के लिए ही है। मनुष्य भक्तिद्वारा मायाशक्ति युक्त परमात्मा को सरलतापूर्वक प्राप्त करता है।

गीता तेरहवें अध्याय का सार - भीष्मपर्व के ३७ वें अध्याय में क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग वर्णित है। मनुष्य अपने को अज्ञान वश देह मान लेता है किन्तु क्या मनुष्य देह है? नही? इन सबका उत्तर देते हुए भगवान् कहते हैं - देह आत्मा का क्षेत्र है तो आत्मा देह का स्वामी, पोषक, धारक और क्षेत्रज्ञ है। आत्मा की माया से आवृत होने पर जीवात्मा, मायाशक्ति सहित होने पर परमात्मा या परमेश्वर कहते हैं वह माया रहित परमात्मा से भिन्न नहीं है। परमात्मा ने अपनी शक्ति से विश्वप्रपञ्च की रचना की। सृष्टि दो प्रकार की है जीवरूपा और जडरूपा। समिष्टिरूप में सारा ब्रह्माण्ड परमेश्वर रूप क्षेत्रज्ञ का क्षेत्र है। क्षेत्र विकारवान् होने से उत्पन्न होकर परिवर्तित होता हुआ विनाश को प्राप्त होता है। किन्तु क्षेत्रज्ञ (मायाबद्धजीवात्मा या मायामुक्तआत्मा) विकार रहित एवं नित्य हैं। इसी अध्याय में आगे भगवान् श्रीकृष्ण ने ज्ञान प्राप्ति के साधनों एवं ज्ञानी के लक्षणों की चर्चा की है। अमानित्व, मिथ्या प्रदर्शन से दूर रहना, अहिंसा, आर्जव (सारल्य), आचार्योपासना, शौच, स्थैर्य, अनहंकारिता, समचित्तता, एकान्त सेवन, आध्यात्मिक ज्ञान में निष्ठा ये सब ज्ञान के साधन तथा ज्ञानी के लक्षण हैं।

गीता चतुर्दश अध्याय का सार - भीष्मपर्व के ३८ वें अध्याय में गुणत्रयविभाग योग वर्णित है। सृष्टि रचना करने वाली ईश्वरीय शक्ति को माया अथवा प्रकृति कहते हैं और शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्मा को मायाशक्ति सहित होने पर ईश्वर या परमेश्वर कहते हैं। क्षेत्र में बीज बोकर उसका स्वमी जैसे अन्नादि उत्पन्न करता है उसी प्रकार परमात्मा जड प्रकृति में संकल्प बीज बोकर सृष्टि करता है जिससे जड प्रकृति सचेतन होकर गतिशील हो जाती है। गुणों में क्षोभ होने से सृष्टि होती है। प्रकृति के सत्व, रज और तम ये तीन गुण हैं। अतः सब कुछ त्रिगुणमय है। इन में सत्व गुण सर्वोत्कृष्ट है यह निर्मल होने से प्रकाशक, सुखदायक, ज्ञान वैराग्योत्पादक है। जब कि रजोगुण तृष्णाकारक, तथा

चञ्चलता उत्पन्न करने वाला होने से लोभ, स्वार्थ एवं सांसारिकता में लगा देता है इसका फल अशान्ति एवं दुःख है। तमो गुण निकृष्ट होता है। अज्ञान जनित तम से प्रमाद आलस्यादि दुर्गण उत्पन्न होते हैं। इसके विपरीत त्रिगुणातीत पुरुष जीवन्मुक्त होकर अमृतमय परमानन्द अवस्था को प्राप्त कर कृतार्थ होता है। आगे भगवान् ने अर्जुन को त्रिगुणातीत पुरुषों के लक्षण बताएँ । वह रागद्वेष विहीन, उदासीन, आत्माराम, अहंकार शून्य होता है।

गीता पन्द्रहवें अध्याय का सार - भीष्म पर्व के ३९ वें अध्याय में 'पुरुषोत्तम' योग की चर्चा है। इस अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण सृष्टि की उत्पत्ति, मानव और ईश्वर तत्व की विवेचना करते हैं। यह संसार अश्वत्थवृक्ष के सदृश है जिसका मूल ऊर्ध्व और शाखाएँ नीचे हैं। तात्पर्य यह है कि इस वृक्ष का अदृश्य एवं अलौकिक मूल स्वयं परमात्मा है। इसकी शाखाओं के विस्तार प्रकृति के कारण निम्नगामी हैं। इससे मुक्त होने के लिए वैराग्य रूपी शस्त्र की आवश्यकता है जिससे संसार के जटिलबन्धनों से मुक्त हो सकता है। वैराग्य द्वारा विषयों की आसक्ति से मुक्त होकर मनुष्य दिव्य जीवन का अनुभव कर लेता है। मान, मोह आसक्ति से रहित होकर आध्यात्म चिन्तन से द्वन्द्व मुक्त होकर विवेकी पुरुष परम पद प्राप्त कर लेता है। इस सृष्टि में तीन ही तत्व हैं - प्रकृति, जीव और परमात्मा। गीता के अनुसार मनुष्य देह में विराजमान जीवात्मा अविनाशी अथवा अक्षर है तथा देह विनाशी तथा क्षर पुरुष है, इन दोनो से अतीत या परे पुरुषोत्तम परमात्मा हैं।

गीता षोडशाध्याय का सार - भीष्मपर्व के दैवासुरसम्पद्विभागयोगनामक इस अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण मानवीय प्रकृति के दो विभाग करते हैं - दैवी अथवा उच्च तथा आसुरी अथवा निम्न। भगवान् यहाँ मनुष्य की जीवन यात्रा के दो पृथक् मार्गों का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट कर देते हैं कि मनुष्य अपना मार्ग चयन करने में सर्वथा स्वतन्त्र है। भयमुक्त, शुद्ध चित्त, परमात्म स्वरूप की जिज्ञासा एवं तदर्थ प्रयत्न, सम्पत्ति का सम्यक् वितरण, पवित्र भावनासे उत्तम कार्य (यज्ञ), आत्मोन्नति के लिए सद्ग्रन्थों का अध्ययन, अहिंसा, सत्यनिष्ठा, क्रोध का त्याग, भोग्य वस्तुओं में अनासक्ति, और शान्तभाव, भूतदया, मुदु व्यवहार, क्षमा, धैर्य, शुचिता अद्रोह और नातिमानिता ये दैवी सम्पत् हैं। इसके विपरीत अभिमान, क्रोध, पारुष्य अज्ञान आदि आसुरी सम्पत्तियाँ हैं।

गीता सप्तदश अध्याय सार - भीष्मपर्व के ४१ वें अध्याय में श्रद्धात्रयविभागयोग वर्णित है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य की आन्तरिक वृत्ति श्रद्धा ही मनुष्य का यथार्थ रूप है। जो
पुरुष जैसी श्रद्धावाला है वह स्वयं भी वही है। मनुष्य के स्वभाव के अनुसार श्रद्धा भी तीन प्रकार की सात्विकी, राजसी, तामसी होती है। श्रद्धा को सात्विक बनाने का प्रयत्न करते रहना तथा राजसी एवं तामसी भाव का परित्याग करते रहना ही विकास की प्रक्रिया हैं। सात्विक श्रद्धा ही अध्यात्मिक जीवन का रहस्य हैं। श्रद्धा से ही जीवन का उद्धार होता है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रद्धा के तीन उत्तम मध्यम

और अधम स्वरूपों के विशद वर्णन द्वारा साधक को राजसी, तामसी श्रद्धा के परीत्याग एवं सात्विक श्रद्धा के विकास हेतु प्रेरित करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि वेद में प्रसिद्ध परमात्मा के नाम 'ॐ तत् सत्' के उच्चारण मात्र से कल्याण होता है।

गीता अठारहवें अध्याय का सार - भीष्मपर्व के ४२ वें अध्याय में मोक्षसन्यास योग की चर्चा की गयी है। भगवद्गीता में आध्यात्मिक क्षेत्र के विचारों में समन्वय स्थापित किया है। इसी कारण आसक्ति एवं फलाशा के त्याग पर बल दिया है और उसे हि कर्मयोगी का सन्यास कहा है। भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भी अत्यन्त कुशलतापूर्वक भक्ति प्रधान निष्काम कर्म योग की प्रस्थापना करते हैं। इस अध्याय के आरम्भ में ही अर्जुन द्वारा सन्यास एवं त्याग के विषय में स्पष्ट अर्थ जानने की जिज्ञासा किये जाने पर श्रीकृष्ण विभिन्न मतों की चर्चा के साथ त्याग के तीन प्रकार बतलाते हैं। आसक्ति एवं फलेच्छा के त्याग पूर्वक नियत कर्म करना सात्विक त्याग, कर्तव्यकर्म को कष्टकारक मानकर किया गया त्याग राजसत्याग एवं प्रमादवश किया त्याग तामस त्याग है। जीवन में वास्तविकपूर्ण त्याग संभव न होने के कारण कर्मफलत्याग ही वास्तविक त्याग है। यहाँ भगवान् ने समस्त कर्मो के पाँच हेतु बतलाएँ है। भक्ति प्रधान कर्मयोगी कर्म समर्पण एवं आत्मसमर्पण द्वारा कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। यहाँ भगवान् ने बुद्धि, धृति, सुख आदि के सात्विक राजस तामस भेदों की चर्चा करते हुए सात्विक की प्रशंसा की है। यहाँ चारो वर्णों के स्वाभाविक कर्मों की विशद चर्चा करते हुए सहज कर्म में दोष प्रतीत होने पर भी उसके परित्याग का निषेध किया है क्यों कि पूर्ण निर्दोष कर्म सम्भव ही नही है। शरणागति भगवान् की प्राप्ति का श्रेष्ठ और सरलतम उपाय है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि, "हे अर्जुन तू समस्त वादविवाद एवं तर्कवितर्क का त्यागकर एक मेरी शरण में आ जा, तुझे पाप विमुक्त कर दूँगा। तू शोक, चिन्ता, भय और भ्रम छोड दे। भगवान् कहते हैं - गीता का उपदेश अधिकारी को ही देना चाहिये। इस उपदेश से अर्जुन ने स्वधर्म का पालन किया व्यासदेव की कृपा से यह दृश्य देख सञ्जयने धृतराष्ट्र से कहा चतुर्थ उपपर्व भीष्मवधपर्वकी शुरुवात ४३ वें अध्याय से होती है। इसमें गीता महात्म्य की चर्चा की गयी है। गीता सर्वशास्त्र मयी है। गीता, गङ्गा, गायत्री और गोविन्द इन 'ग' कार युक्त चार नामों को धारण करने से संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती। इसके अनन्तर युधिष्ठिर द्वारा कुलवृद्ध पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, आचार्य कृप एवं मातुल शल्य से युद्धार्थ अनुमति एवं विजय का आशीर्वाद प्राप्त करने का वर्णन है।

आगे ४४ से ४९ अध्याय तक प्रथम दिवस के युद्ध का वर्णन किया गया है। उभय पक्ष के सैनिकों का द्वन्द्व युद्ध, भीष्म-अभिमन्यु युद्ध, शल्यकृत उत्तर कुमार वध, श्वेत पराक्रम और उसका भीष्म के हाथो वध शंखयुद्ध और भीष्म के प्रचण्ड पराक्रम के साथ प्रथम दिवस का युद्ध
विराम लेता है।

द्वितीय दिवस के युद्ध का वर्णन भीष्मपर्व के ५० से ५६ अध्यायों में किया गया है। चिन्तित युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण का आश्वासन, धृष्टद्युम्न के उत्साह और क्रौञ्चारुण व्यूह के निर्माण के साथ द्वितीय दिवस का युद्ध आरम्भ होता है। कौरव सेना की व्यूहरचना, शंखनाद के साथ भीष्म अर्जुन का युद्ध होता है, धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य का युद्ध, भीम द्वारा कलिङ्गों एवं निषादों से युद्ध करते हुए शक्रदेव, भानुमान् और केतुमान् राजाओं का वध किया जाता है। अर्जुन और अभिमन्यु के पराक्रम के साथ द्वितीय दिवस का युद्ध समाप्त होता है।

आगे ५६ से ५९ अध्यायों में तृतीया दिवस के युद्ध का वर्णन किया गया है। दोनों पक्षों की व्यूह रचना के साथ तुमुल युद्ध शुरू होता है। पाण्डव वीरों के पराक्रम से व्याकुल दुर्योधन का भीष्म से संवाद होता है। भीष्म के पराक्रम, श्रीकृष्ण द्वारा उनको मारने के लिए उद्यत होना अर्जुन की प्रतिज्ञा और कौरव सेना की पराजय के साथ तृतीय दिवस के युद्ध का विराम होता है।

चतुर्थ दिवस के युद्ध का वर्णन ६० से ६४ इन पाँच अध्यायों में निबद्ध हैं। चौथे दिन का प्रारम्भ भीष्म और अर्जुन के द्वैरथ युद्ध से होता है। अभिमन्यु के पराक्रम, धृष्टद्युम्न द्वारा शल्यपुत्र का वध, भीम द्वारा गजसेना का संहार, भीम-भीष्म युद्ध, सात्यकि तथा भूरिश्रवा के युद्ध वर्णन के रोचक एवं रोमाञ्चकारी प्रसङ्ग वर्णित हैं। भीमसेन और उनके पुत्र घटोत्कच द्वारा कौरवों की पराजय के साथ ही चौथे दिन का युद्ध का विश्राम होता है।

अध्याय ६५ से ७४ इन दस अध्यायों में पाँचवे दिवस के युद्ध के दृश्यों का सजीव वर्णन किया गया है। इसका प्रारम्भ धृतराष्ट्र सञ्जय संवाद से होता है। दुर्योधन द्वारा पाण्डवों की विजय का कारण पूछने पर भीष्म द्वारा ब्रह्मा जी की स्तुति के माध्यम से नरावतार अर्जुन एवं नारायणावतार श्रीकृष्ण की महिमा का प्रतिपादन किये जाने का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। इसके उपरान्त कौरव पाण्डवों द्वारा क्रमशः मकर व्यूह और श्येन व्यूह की रचना के साथ पाँचवां दिन के युद्ध की समाप्ति होती है।

छठवें दिन के युद्ध का विवरण ७५ से ७९ अध्यायों में उपलब्ध होता है। पाण्डव और कौरव का युद्ध प्रारम्भ होता है। आगे के अध्याय में धृतराष्ट्र की चिन्ता को दर्शाते हुए भीमसेन, धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य के पराक्रम का वर्णन प्राप्त होता है। उभय सेनाओं के संकुलयुद्ध, भीमसेन द्वारा दुर्योधन की पराजय के उपरान्त अभिमन्यु एवं द्रौपदी पुत्रों के धृतराष्ट्र पुत्रों के साथ हुए युद्ध से छठा दिन समाप्त होता है।

भीष्मपर्व के आगे के ८० से ८६ अध्यायों में सातवे दिन के महासंग्राम का भयावह वर्णन प्राप्त होता है। सातवें दिन के युद्ध का आरम्भ भीष्म द्वारा दुर्योधन को आश्वसन प्राप्त होने के उपरान्त मण्डल एवं वज्रव्यूह की रचना के साथ दोनो सेनाओं के तुमुल युद्ध से होता है। द्रोणाचार्य-विराट युद्ध में विराट पुत्र शङ्ख की मृत्यु, शिखण्डी अश्वत्थामा युद्ध, सात्यकी द्वारा अलम्बुष एवं धृष्टद्युम्न द्वारा दुर्योधन की पराजय तथा भीमसेन-कृतवर्मा युद्ध, भगदत्त के हाथों घटोत्कच की

पराजय तथा मद्रराज पर नकुल एवं सहदेव की विजय का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त युधिष्ठिर से राजा श्रुतायु का पराभव, चेकितान् और कृपाचार्य का मूर्च्छित होना,

भूरिश्रवा से धृष्टकेतु एवं अभिमन्यु से चित्रसेन की पराजय, सुशर्मा अर्जुन युद्ध और अर्जुन का पराक्रम, पाण्डवों का भीष्म पर आक्रमण, युधिष्ठिर का शिखण्डी को उपालम्भ और भीम के पुरुषार्थ की चर्चा आगे के प्रसङ्गों में की गयी है। भीष्म-युधिष्ठिर, धृष्टद्युम्न और सात्यकी का विन्द और अनुविन्द से संग्राम के साथ द्रोणाचार्य के पराक्रम से सातवें दिन का युद्ध विराम होता है।

भीष्मपर्व में ८७ से ९६ अध्यायों में आठवें दिन के महासंङ्ग्राम का वर्णन प्राप्त होता है। भीष्म के पराक्रम के उपरान्त, भीमसेन द्वारा धृतराष्ट्र के आठ पुत्रों का वध किया जाता है। भीष्म की दुर्योधन से युद्ध विषयक चर्चा होती है। इरावान्के वध से अर्जुन का शोकाकुल होना, भीमसेन द्वारा धृतराष्ट्र के नौ पुत्रों का वध, अभिमन्यु-अम्बष्ट युद्ध का आठवे दिन की प्रमुख घटनाओं के साथ आठवे दिन भी युद्ध विराम होता है।

भीष्मपर्व के ९७ से १०७ अध्याय तक नौवे दिन के युद्ध का अद्भुत वर्णन किया गया है। दुर्योधन द्वारा अपने मंत्रियों से मन्त्रणा कर भीष्म से पाण्डवों को मारने या कर्ण को युद्ध करने

की अनुमति देने के अनुरोध से नव दिन के युद्ध प्रसङ्ग वर्णन का आरम्भ होता है। आगे अर्जुन के पराक्रम वर्णन के साथ भीष्म की भयङ्कर युद्ध हेतु प्रतिज्ञा तथा दुर्योधन द्वारा भीष्म की रक्षा के उपाय किया जाना, दोनो पक्षों द्वारा व्यूह रचना पूर्वक घमासान युद्ध होने का रोचक वर्णन प्राप्त होता हैं। द्रोपदी पुत्रों के साथ अभिमन्यु का अलम्बषराक्षस से भीषण युद्ध और उसके मारे जाने के साथ कौरव सेना के पलायन का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त अर्जुन-भीष्म का, सात्यकी का कृपाचार्य-द्रोणाचार्य एवं अश्वत्थाम के साथ युद्ध, अर्जुन का सुशर्मा और द्रोणाचार्य के साथ युद्ध और भीम द्वारा गजसेना के संहार के साथ भीषण रक्तनदी का भयावह वर्णन प्राप्त होता है। सात्यकी और भीष्म के युद्ध को देखकर दुर्योधन भीष्म की रक्षा हेतु दुःशासन को आदेश देता है। युधिष्ठिर, नकुल सहदेव द्वारा शकुनि की अश्वसेना का विनाश तथा शल्य के साथ उन सब के युद्ध का वर्णन किया गया है। भीष्म द्वारा पराजित पाण्डवसेना के पलायन को देखकर भीष्म को मारने उद्यत हुए श्रीकृष्ण को अर्जुन रोकता है। इसी के साथ नौवे दिन के युद्ध की समाप्ति होती है। इसी दिन युद्ध विराम के बाद पाण्डवों की गुप्त मन्त्रणा भीष्म के वध का उपय जानने का प्रसङ्ग १०७ वें अध्याय में वर्णित है।

दसवें दिवस के युद्ध का प्रसङ्ग भीष्मपर्व के १०८ वे अध्याय से प्रारम्भ होता है जिसकी समाप्ति १२२ अध्याय में होती है और इसी के साथ भीष्म पर्व का भी विराम होता है। इस वर्णन की शुरुआत भीष्म-शिखण्डी समागम एवं अर्जुन द्वारा भीष्म वध हेतु शिखण्डी को प्रोत्साहित करने से होती है। अर्जुन एवं पाण्डवों

द्वारा अपनी सेना का संहार होते देखकर दुर्योधन जब भीष्म पितामह से कुछ करने को कहा तब भीष्म ने शत्रु पक्ष के लाखों सैनिकों का संहार किया। तत्पश्चात् अर्जुन के प्रोत्साहन से शिखण्डी भीष्म पर आक्रमण करता है, दोनो सेनाओं के प्रमुख वीरों के परस्पर युद्ध के साथ ही अर्जुन और दुःशासन का घोर युद्ध होता है। आगे कौरव पाण्डव दोनो पक्षों के प्रमुख महारथियों के परस्पर द्वन्द्व युद्ध का वर्णन किया गया है। इधर द्रोणाचार्य अश्वत्थामा को अशुभ शकुनों की सूचना देते हुए भीष्म की रक्ष हेतु धृष्टद्युम्न से युद्ध का आदेश देते हैं। इधर भीम भी कौरव पक्ष के प्रमुख महारथियों के साथ अकेले युद्ध करते हुए
अपना पराक्रम प्रकट करते हैं। अर्जुन अपने बाणों से भीष्मपितामह को मूर्च्छित कर देता है, भीष्म पुनः सचेत होकर पाण्डव सेना का भीषण संहार करते हैं। कौरव पक्ष के प्रमुख महारथियों द्वारा सुरक्षित होने पर भी अर्जुन भीष्म को रथ से गिरा देता है। इसके पूर्व भीष्म और अर्जुन के बीच हुए तुमुल युद्ध का विशद वर्णन है। भीष्म अवध्य थे तथा शिखण्डी के पूर्व में स्त्री होने से भीष्म उस पर प्रहार नहीं कर रहे थे। उन्होनें पूर्व में शान्तनु से प्राप्त इच्छामरण के वरदान के अनुसार अब प्राणत्यागने का मन बना लिया था और उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे थे। भीष्म के शरीर में इतने बाण लगे थें कि गिरने पर भी भूमि स्पर्श नहीं हुआ वे शरशय्या पर ही उत्तरायण की प्रतीक्षा करते पडे रहें। आगे अर्जुन द्वारा दिव्यजल प्रकट कर भीष्म की प्यास बुझाना और भीष्म का अर्जुन की प्रशंसा करते हुए दुर्योधन को संधि के लिए समझाने के प्रसङ्ग बडे विस्तार से वर्णित है। भीष्म द्वारा कर्ण के साथ जन्म सम्बन्धी रहस्यमय संवाद से भीष्मपर्व का कथा भाग पूर्ण होता है।

।। भीष्मपर्व कथासार समाप्त ।।